वक्तव्य

ब्रह्मचारीजी का प्रस्तुत ग्रन्थ २४२६ वीं महावीर जयंती उत्सव पर प्राप्त हुआ था। आवश्यकता नहीं कि पाठकों को इसकी सिफारिश में कुछ कहा जाय। प्रत्येक जैन को ब्रह्मचारीजी की विद्वता और विचारशीलता से परिचित होना चाहिये।

'मुक्ति और उसका साधन'—विभिन्न धर्ममतों का वास्तव में यही लक्ष्य और यही विवादग्रस्त विषय है। इसके संबंध में अपनी धारणाएं ठीक रखना, अपनी वास्तव-उन्नति चाहने वाले प्रत्येक सत्य सदिच्छु के लिये आवश्यक है। क्योंकि लक्ष्य की स्पष्टता और उसके संबंधमें समीचीन अवबोध पर ही व्यक्ति की उन्नति की दिशा निर्भर रहती है। अत हम भरोसा रखते हैं कि पाठक इसे उसी गौर के साथ पढ़गे जिसकी कि यह पुस्तिका मुस्तहक है।

मंत्री



मुक्ति और उसका साधन।

इसमें कोई शका नहीं है कि हम व आप रात्रि दिन [अ]पनी निर्बलताओं को अनुभव कर रहे हैं। उनमें प्रधान [क]मजोरी अज्ञान और कषाय की है। बहुत सी बातों की [ज]ानकारी न होने से हम मूढ बने रहते हैं। यह मूढता [उ]स समय तक दूर नहीं हो सकती है जब तक हम पूर्ण [ज्ञ]ानवान न हो जावें। एक ज्ञान पिपासु मानव इसी [ल]िये अपने ज्ञान के बढाने का उद्यम किया करता है। [अ]ज्ञान वास्तव में घोर दुःखों का कारण है। एक बालक [अ]पनी अज्ञान अवस्था में एक मिट्टी के खिलौने के साथ [ब]हुत लाड प्यार करता है। यदि कदाचित् उसके हाथ से [छ]ूट कर फूट जाता है वह तीव्र आक्रन्दन करता है। यदि [उ]सको यह ज्ञान होता कि यह मिट्टी का बना खिलौना [है] और ~) में वैसा ही खरीदा जा सकता है तो वह इतना [दु]ःखी नहीं होता। अज्ञानी मानव के एक ही पुत्र था। [व]ह रोग ग्रसित हो मर गया तब वह अज्ञानी पिता [अ]त्यन्त शोकातुर हो विलाप करता है। अज्ञान ही चिंता-[ओ]ं की उत्पत्ति का कारण है। किसी नगर के दृश्य व [क]िसी नाटक के दृश्य का ज्ञान हो जावे ऐसी चिंता उस [स]मय तक नहीं मिटती है जिस समय तक उस नगर या [उ]स नाटक को देख न लिया जावे। जिस किसी को सर्व [ज]गत के पदार्थों का पूर्ण ज्ञान हर समय रहा करेगा वही

में कुछ और जानूं इस चिंता से छूट सका है । इसी तरह कषाय की निर्बलता सताती है । जिन अशुद्ध भावों से आत्मा की सुख शांति बिगड जावे उन भावों को कषाय भाव कहते हैं । मूल में इसके चार भेद हैं क्रोध, मान, माया, लोभ । यह चारों चडाल हमारे क्लेशों के मूल कारण हैं । क्रोध के आवेश में हम विवेक शून्य हो जाते हैं और चाहे जो कुछ करने लगते हैं—जिस पर क्रोध का निशाना होता है उसको हर तरह सताते हैं व कभी आप अपना अपघात कर डालते हैं । मान कषाय हमको अंधा बना देता है—धन, विद्या, आज्ञा, रूप, बल, तप, आदि के मद का नशा जब चढ जाता है तब हम दूसरों को उसी तरह तुच्छ गिनते हैं जिस तरह पर्वत पर चढे हुए मानव को नीचे मैदान में खडा हुआ मनुष्य बहुत छोटा मालूम होता है । इसका परिणाम भी उल्टा होता है । उस मानी मानव को भी दूसरे लोग तुच्छ दृष्टि से देखते हैं जैसे मैदान में खडे हुए मानव को पर्वत पर चढा हुआ मानव बहुत छोटा दीखता है । मान चित्त को कठोर बना देता है । दया भाव व नम्रता को दूर कर देता है । मानी शिष्य विद्या लाभ से, वंचित रहता है । मानी निष्कारण जगतको अपना द्वेषी बना लेता है । मानी को निरन्तर अपने अपमान न हाजाने का भय रहता है ।



यदि कदाचित् किसीने उसकी विनय न की तो वह क्रोध की अग्नि से जलने लगता है।

मायाचार का कुभाव मानव को असत्यवादी तथा ठग और विश्वासघाती बना देता है। किसी पदार्थ को अनुचित रूप से लेनेके लिये व किसीको अनुचित रूप से वश करने के लिये एक मानव कपट का जाल बिछाता है और अपना मतलब दूसरों की हानि करके निकालना चाहता है। कपटी मानव निरन्तर भयभीत रहता है। यदि कपट प्रगट होजाता है तो महान क्लेश उठाता है। कपटी का मन सदा कपट से मलीन रहता है। उसको असत्य प्रतिज्ञा करने में, असत्य वादा करने में, वृथा ही दूसरों को विश्वास दिलाने में, तरह २ का धोखा देने में कुछ भी ग्लानि नहीं रहती है। कपटी मानव भोली स्त्रियों का धन छीन लेता है। भोले स्वामी की सम्पत्ति को हजम कर स्वामी को दिवालिया बना देता है। उसके कपट से ठगे हुए व्यक्ति यदि किसी न्यायालय की शरण लेते हैं तो उसे अपमानित होकर घोर दंड भुगतना पड़ता है। लोभ कषाय तो सर्व पापों का पिता ही है। स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, तथा कर्ण इन्द्रिय इन पाँचों इन्द्रियों के भोगने की तृष्णा मानव को दिन रात सताती रहती है। इनकी नाना प्रकार की

इच्छाओं को तृप्त करनेके लिये इसके भोगने योग्य पदार्थ के सम्बन्ध को मिलाने की इच्छा पैदा होती है। इसलिये धन का चाहने वाला होकर न्याय व अन्याय से जिस तरह धन आवे धनका संग्रह करने लगता है। धन के पीछे कपट करने में ग्लानि नहीं करता है। तृष्णा से ऐसा धन का लोभी हो जाता है कि समय पर शरीर भोजन पान तथा आराम भी नहीं लेता है। लोभ तीव्रता से कठोर हृदय होकर दान और शून्य हो जाता है। लोभी मानव इन्द्रियों का गुलाम जाता है— पाँचों इन्द्रियों में दो इन्द्रियाँ प्रबल हैं। इन्द्रिय का लोलुपी होकर मांस मदिरा व अन्य खाने पीने लगता है। काम के वशीभूत हो स्त्री के विवेक से शून्य होजाता है। वेश्यारमण करके शरीर व दुनिवार रोगों का शिकार बन जाता है। लोभ मानव द्यूत रमण में फस जाता है— द्यूत आपत्तियों का घर है। लोभी मानव कौनसा पाप घृणित काम है जो नहीं कर बैठता है। लाभ कषाय भाव मनको सदा असंतोषी व मलीन रखता है। उसके मन में तृष्णा की आग सदा जला करती है—जो मरण होने तक भी तथा इच्छित धनादि पदार्थों के मिलने पर भी नहीं बुझती है किन्तु दिन पर दिन बढ़ती जाती है।

इस तरह अज्ञान और कपायों के मैल से मैली सर्व संसारी आत्माएं हो रही हैं। इस मैल से छूट कर पवित्र होने का नाम मुक्ति है। मुक्ति होने पर कोई नवीन गुण आत्मा में प्रवेश नहीं करता है किन्तु जो गुण आत्मा में थे परन्तु छिपी हुई दशा में थे वेही गुण मैल न रहने से पूर्ण प्रगट हो जाते हैं। मुक्त होने पर आत्मा अपने असली स्वभाव में ठहर जाता है। उसकी विभाव या औपाधिक या मलीन अवस्था मिट जाती है। आत्मा का जो असली स्वभाव है वही मुक्तात्मा का स्वभाव है। आत्मा रूपी सूर्य अज्ञान और कपाय के बादलों में छिपा था सो अज्ञान और कपायों के दूर हो जाने पर जैसा का तैसा प्रगट हो जाता है। यही मुक्ति है।

आत्मा का असली स्वरूप वास्तव में अनुभव गोचर है वचनों से कहा नहीं जा सका। तो भी संकेत मात्र उसका स्वभाव ध्यान में आजावे इस लिये उसके कुछ विशेष गुणों को कहा जाता है। सामान्य पने तो वह अमूर्तीक वर्ण गंध रस स्पर्श से शून्य अविनाशी एक सत् द्रव्य है। जो जो सत् होता है वह सदा पाया जाता है। वह न अकस्मात् जन्मता है न कभी मरता है। सत् द्रव्य होने से वह एक ही काल में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूप है अर्थात् उसमें उत्पत्ति, विनाश व स्थिर पना अर्थात्

rise, decay and permanency सदा पाए जाते हैं। कोई भी सत् द्रव्य कूटस्थ नित्य जैसा का तैसा नहीं रह सक्ता है। उसका नाश कभी न होगा तौ भी उसमें अवस्थाएं बदला करती हैं। पुरानी अवस्था या पर्याय का नाश जब होता है तब ही नवीन अवस्था या पर्याय का जन्म होता है या यों कहना चाहिये कि नवीन अवस्था का पैदा होना वही पुरानी अवस्था का नाश है जिसमें यह परिवर्तन या बदलाव हुआ वह द्रव्य अपने गुणोंको लिये हुए न जन्मता है न मरता है। पुद्गल या जड रूपी पदार्थ अर्थात् matter एक सत्द्रव्य है इसमें ये तीनों बातें प्रगट झलक रही हैं। पुद्गल परमाणुओं से मिल कर एक मिट्टी का प्याला बनता है उस प्याले को तोड कर जब ठीकरे बनाए गए तब प्याले की अवस्था का नाश व ठीकरोंकी अवस्था का जन्म हुआ परन्तु जो मिट्टी रूप पुद्गल के परमाणु प्याले में थे वे ठीकरों में भी हैं। एक चने का दाना हमारे हाथ में है जिस समय उसको उंगली से मसल कर चूरा बनाया गया तब चने की हालत का नाश व चूरे की दशा की उत्पत्ति हुई परन्तु जो परमाणु चने के पिंड में थे वे चूरे के भीतर हैं—इस तरह पुद्गल द्रव्य में एक ही समय में जैसे नाश, उत्पत्ति तथा स्थिरपना पाया जाता है वैसे ही ये तीन स्वभाव हर एक सत् द्रव्य

में पाए जाते हैं । आत्मा भी सत् द्रव्य है इस लिये उसमें भी ये तीनों स्वभाव पाए जाते हैं । जिस समय किसी अशुद्ध आत्मा में क्रोध का भाव होरहा है किसी के उपदेश से जब वह क्रोधभाव नाश होता है तब ही शात भाव पैदा होता है तथा जिसमें क्रोध का नाश या शाति का जन्म हुआ वह आत्मा सदा बना रहता है । आत्मा का ऐसा परिवर्तनशील स्वभाव है तौभी नित्य स्वभाव है इसी से इस की अशुद्ध अवस्था का नाश होकर शुद्ध अवस्था का जन्म होता है तौ भी वही आत्मा बना रहता है । परिवर्तन में जो अवस्थाए नाश होती रहती ई इसी को अनित्य पना कहते हैं हरएक सत् द्रव्य अनित्य तथा नित्य उभय स्वभाव वाला है । यदि आत्मा नित्यानित्य स्वभाव अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वभाव रूप न होती इसके अशुद्ध अवस्था का नाश होकर कभी मुक्त या शुद्ध अवस्था न पैदा हो ।

इस सामान्य स्वभाव के सिवाय आत्मा के नीचे लिखे कुछ विशेष गुण यान में लेने योग्य हैं जिनके ऊपर प्रतीति लाने मे हम आत्मा का स्वरूप संकेत मात्र अपनी बुद्धि में जमा सकते हैं ।

(१) चैतन्य स्वभाव—(Consciousness) इसी को देखना जानना या दर्शन ज्ञान कहते है । आत्मा में ऐसी

अपूर्व दर्शन और ज्ञानकी शक्ति है जिससे यह एक समय में सम्पूर्ण देखने योग्य व जानने योग्य पदार्थों को देख व जान सक्ता है। इस आत्मा में हरएक पदार्थ की तीनों कालों की सर्व अवस्थाओं का ज्ञान है। यदि विचार कर देखा जावेगा तो यह अच्छी तरह निश्चय हो जायगा कि ज्ञान कोई किसी को देता नहीं न कोई किसी से लेता है। धन तो दिया लिया जा सक्ता है परन्तु ज्ञान दिया लिया नहीं जा सक्ता है। कोई अध्यापक या पुस्तक मात्र निमित्त कारण है—इनकी संगति से अज्ञान का परदा हट जाता है और ज्ञान भीतर से झलक उठता है। जो पढ़ाता है उसका ज्ञान भी बढ़ता है तथा जो पढ़ता है उसका ज्ञान भी बढ़ता है-इस बढ़नेके रहस्य का खुलासा सिवाय इसके और कुछ नहीं हो सक्ता है कि ज्ञान का खजाना तो हरएक आत्मा में पूर्ण भरा हुआ है जितनी२ अज्ञान की मिट्टी हटाई जाती है उतना उतना ज्ञान का भंडार प्रकाश में आता जाता है। इसी से यह सिद्ध है कि आत्मा चैतन्य नाम के विशेष गुण का धारी है। यह गुण आत्मा के सिवाय अन्य किसी द्रव्य में नहीं मिलता है। इसही गुण के लक्षण से आत्मा लक्ष्य में आता है।

(५) शांति या वीतरागता या चारित्र—(Peacefulness) यह भी एक अपूर्व विशेष गुण आत्मा के

भीतर है। शांति के विरोधी राग द्वेष हैं या क्रोध मान माया लोभ हैं या परचारित्र है। संसारी आत्माओं में राग द्वेष या क्रोधादि हैं यह बात प्रत्यक्ष झलक रही है। ये सर्व अशुद्ध भाव हैं या औगुण हैं। इनके कारण से ज्ञान में धक्का पहुंचता है ज्ञान मलीन हो जाता है। इनकी अधिकता में ज्ञान अपनी उन्नति नहीं कर सकता है। क्रोधी मानव, लोभी व्यक्ति, मानी शिष्य ज्ञान का लाभ नहीं कर सक्ता है। जब मनमें शांति होती है तब ज्ञान का विकाश होता है। इसीलिये विद्वान लोग एकांत शांत स्थान में बैठ कर विद्या का मनन करते हैं। शांति गुण के साथ चैतन्य गुण की मित्रता है इससे यह सिद्ध है कि शांति हर एक आत्मा का एक अपूर्व विशेष गुण है।

(३) आनन्द या अतीन्द्रिय सुख (Bliss) यह भी इस आत्मा का एक अद्भुत गुण है। हरएक आत्मा सुख को चाहता है। वह सुख हरएक आत्मा के पास है। अज्ञानी आत्मा इस बात का पता न पाकर इन्द्रियों के द्वारा होने वाले क्षणिक सुख को सुख मान बैठता है। सुख आत्मा का गुण है इसीसे परमात्मा या शुद्ध आत्मा सदा आनन्दमई है। हम इस बात की परीक्षा कर सक्ते हैं कि सुख आत्मा का गुण है। जब हम किसी के ऊपर दयालु होकर उसका उपकार करते हैं तब हमारे मनमें एक

आनन्द की लहर उठती है। यही सच्चे सुख गुण का झलकार है। परोपकारी को थोड़ा या बहुत मोह या लोभ कम करना पड़ता है तबही पर का भला हो सक्ता है। जितना अंश मोह घटता है उतना ही सुखगुण झलकता है परमात्मा म मोह बिल्कुल नहीं है इसी से वह सदा आनन्द मय है—यदि हम भी एक क्षण के लिये सर्व से मोह छोड़ दें तो हम अपने को सदा सुखी अनुभव करेंगे। परोपकार करते समय जो सुख होता है वह इन्द्रिय भोग का सुख नहीं है इसी से वह अतीन्द्रिय सुख है— यही हरएक आत्मा का विशेष गुण है। इस तरह हमने मालूम किया कि जिस सत्द्रव्य में चैतन्यगुण, शांति तथा आनद ऐसे विशेष गुण रहते हैं वही आत्मा है। ऐसा अमूर्तीक अविनाशी अखंड आत्मा कहा है ? तो उत्तर यही होगा कि हर एक प्राणी के शरीर मंदिर में व्याप्त है। जितना बड़ा जिसका शरीर का आकार है उतना ही बड़ा उसकी आत्मा का आकार है। पग से मस्तक पर्यन्त आत्मा का लक्षण व्याप्त मिलता है। सुख व दुःख की वेदना सर्व शरीर भर में होती है पग में कांटा चुभता है तब सर्वदेह म वेदना होती है। स्वाद का ज्ञान जिह्वा इन्द्रिय के द्वारा होता है परन्तु उस स्वाद के सुख की वेदना सर्व अंग में होती है।

वास्तव में देखा जावे तो यह आत्मा स्वभाव से परमात्मा ही है। यदि अज्ञान और कषाय का मैल हट जावे तो संसारी आत्मा परमात्मा ही है। असल में मुक्ति अपने ही आत्मा में है। इस अपने स्वभाव को अर्थात् मुक्ति को कैसे प्राप्त किया जावे अब मात्र इस बात पर ही विचार करना है। इसका सीधा व सादा उत्तर यही है कि जैसे मैले कपडे की शुद्धि कपडे को ध्यान पूर्वक रगडने से होती है वैसे आत्मा की शुद्धि आत्मा को ध्यान पूर्वक अनुभव करनेसे होती है Concentrated self realisation is the way to liberation यह मन चचल है। नाना प्रकार के अन्य विचारों में उलझा रहता है। मुमुक्षु का कर्तव्य है कि वह अपने मन को आत्मा के गुणों के मनन म रोक देवे। आत्मीक गुणों के विचार करने को भावना meditation कहते हैं। भावना करते करते जब मन आत्मा के विचार में थम जाता है तब ध्यान पैदा होता है। उसी ही समय स्वात्मानुभव जगता है। यह स्वात्मानुभव एक क्षण मात्र भी हो तो भी बडा उपयोगी होता है। स्वात्मानुभव के समय आत्मा को सुख, शांति का अनुभव होता है साथ ही अज्ञान और कषाय का मैल कटता है। इसलिये आत्म ध्यान के लिये आत्मा के गुणों का विचार करना आवश्यक है। जिनको भले प्रकार

आत्मा की भावना करनी हो उनको उचित है कि ग्रहस्थी के जजाल से मन को छुड़ावें और साधु या निवृति मार्ग को धारण करके उसी तरह का स्वार्थ रहित व पूर्ण वैराग्य मय जीवन बितावें जिस तरह जैन तीर्थकरों ने अपना साधु जीवन बिताया था। साधुजन इतने वीर होते हैं कि सर्व आरम्भ या परिग्रह का त्याग कर देते हैं—उदर पोषण के लिये भिक्षा वृत्ति से प्रतिष्ठा पूर्वक जो मिलता है उसमें सन्तोष कर लेते हैं। और रात दिन आत्म मनन में रक्त रहते हैं—कभी ध्यान करते हैं, कभी शास्त्र मनन करते हैं, कभी तत्व चर्चा करते हैं। ग्रहस्थ जन आत्मा के गुणों का विचार करने के लिये नीचे लिखे चार कामों का निरन्तर अभ्यास करते हैं।

(१) देव पूजा—जिन महात्माओं ने अपने को शुद्ध कर परमात्म पद प्राप्त किया है उनकी भक्ति करते हैं—उनके गुणों के स्मरण करने में तरह २ के पदार्थों का सहारा लेकर भक्ति रस को बढ़ाते हैं परमात्मा के गुणों का मनन ही आत्मा के गुणों का विचार है—

(२) गुरु भक्ति—अध्यात्म ज्ञान के स्वामी साधु सन्तों की सगति करके व उनकी विनय करके उनके द्वारा आत्मज्ञान का पाठ सीखते हैं

(३) शास्त्र स्वाध्याय—प्राचीन ऋषियोंके द्वारा रचित

शास्त्रों का पठन पाठन करके आत्मतत्वका मनन करते हैं।

(४) सामायिक या ध्यान—प्रातः काल तथा सन्ध्याकाल कुछ देर एकान्तमें बैठकर उत्तम कविताके द्वारा आत्मा के गुणों का मनन करते है।

चचल मन वाले ग्रहस्थों के मन को आत्म विचार में रमाने के लिये चारों ही उपाय उपयोगी हैं—

मन को आकुलता, क्षोभ तथा मैल से वचाने के लिये साधु या ग्रहस्थ पॉच पापों को त्याग करते है—

हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी), कुशील और परिग्रह (मूर्छा या ममत्व) । निवृत्ति मार्ग धारी इन पाँचों पापों को पूर्ण पने त्याग करते हे इसलिये सताए जाने पर भी क्रोध नहीं करते, देख भाल कर चलते बैठते व सर्व क्रिया करते हैं जिससे किसी प्राणी का घात न हो, आरभ का त्याग कर देते हैं, शुद्ध सत्य वाणी वोलते हैं, विना दिये हुए जलादि भी नहीं लेते हैं, मन वचन काय से कामभाव को जीतते हैं व अपने आत्मा में प्रेम रखते हुए किसी से रच मात्र भी ममता नहीं करते हैं अतएव सर्व धन दौलत आदि परिग्रह का त्याग कर देते हैं।

ग्रहस्थ इन पॉच पापों को पूर्ण त्याग नहीं कर सक्ता है इसलिये यथा शक्ति इनको त्यागता है और साधु के पद में पहुचने तक इनको अधिक २ त्यागता जाता है।

एक साधारण ग्रहस्थ मासाहार, शिकार, मौज शौक व धर्म के हेतु पशुओं का सहार नहीं करेगा–किन्तु कृषि वाणिज्य, नीति पूर्ण युद्ध आदि में होने वाली हिंसा को बचा नहीं सका, दूसरों को ठगने के लिये असत्य नहीं बोलेगा। अन्याय पूर्ण चोरी नहीं करेगा, विवाहित जोडे में सतोष करेगा ममता घटाने को अपनी सम्पत्ति का एक प्रमाण बॉध लेगा जिससे तृष्णा ऐसी न सतावे कि जिससे मन कभी सतोष न पावे।

मुक्ति और मुक्ति का उपाय ऊपर लिखित कुछ शब्दों में अनुभव ज्ञान के द्वारा लिखा गया है नीचे ऊपर के कथन की पुष्टि प्राचीन जैन सिद्धात के शास्त्रों द्वारा की जाती है।

श्रीकुदकुदाचार्य (विक्रम प्रथम शताब्दी) लिखते हैं –
परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी
तम्हिठिदा सभावे मुणिणो पावति णिव्वाण
(समयसार १५८)

भावार्थ—परम पदार्थ आत्मा निश्चय से शुद्ध, पर सहाय रहित केवली, मुनि अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानी तथा विशुद्ध ज्ञान मई है जो मुनि उसके स्वभाव में ठहरजाते हैं अर्थात् आत्म ध्यान या आत्मानुभव करते हैं वे निर्वाण या मुक्ति को पाते हैं।

जीवादी सद्दहणं सम्मत्त तेसिमाधगमो णाण
रागादी परिहरण चरण एसो दु मोक्ख पहो ॥
(समयसार १६२)

भावार्थ—जीव आदि का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। उन ही का जानना सम्यग्ज्ञान है तथा रागादि भावों का त्याग करदेना चारित्र है यही मोक्षका मार्ग है। जहा आत्मा का सच्चे स्वभाव का विश्वास व उसी का यथार्थ ज्ञान व उसी में रमणता होती है अर्थात् श्रद्धान व ज्ञान पूर्वक आत्मा का ध्यान होता है वही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र की एकता है और यही मुक्ति का उपाय है।

अप्पाण झायंतो दंसण णाण मइओ अणण्णमणो
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्म णिम्मुक्क ॥
(समयसार १७६)

भावार्थ—जो कोई एकाग्र मन करके दर्शन ज्ञान से पूर्ण आत्माको ध्याता है वह शीघ्रही कर्मों से रहित आत्मा को ही पालेता है अर्थात् उसका आत्मा शुद्ध होजाता है।

एदम्हि रदो णिच्च सतुट्ठो होहि णिच्च मेदम्हि
एदेण होहि तित्तो तो हो हदि उत्तम सोक्ख ॥
(समयसार २१६)

भावार्थ—इसी ही आत्मा के सच्चे स्वभाव में सदा रत हो, इसी में ही नित्य संतोष को पा, व इसी से ही

तृप्त रहो तो तुम्हे उत्तम सुख अर्थात् मोक्ष प्राप्त होगा।

कम्मस्सा भावेण य सव्वण्हू सव्व लोग दरसी य
पावदि इंदिय रहिद अव्वाबाह सुहमणत ॥

(पचास्तिकाय १५६)

भावार्थ—कर्मों के अभाव होने पर यह आत्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर इन्द्रियों के सुख से रहित तथा बाधा रहित अनत सुख को पाता है।

तम्हा णिव्वुदिकामो राग सव्वत्थ कुणदि मा किंचि
सो तेण वीदरागो भवियो भव सायर तरदि ॥

(पचास्तिकाय १८०)

भावार्थ—इसलिये इच्छा रहित होकर जो सब पदार्थों में कुछ भी राग नहीं करता है वह भव्य जीव वीतरागी होकर ससार समुद्र को तर जाता है।

श्री उमा स्वामी महाराज (विक्रम प्रथम शताब्दी) लिखते हैं—

" बन्ध हेत्वभाव निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षोमोक्ष "

(मोक्ष शास्त्र अ० १० सूत्र २)

भावार्थ—कर्म बध के कारणों के न रहने पर तथा बधे हुए कर्मों की निर्जरा हो जाने पर सर्व कर्मों से छूट जाना सो मोक्ष है। कर्म तीन तरह के होते हैं द्रव्य कर्म, भाव कर्म, और नोकर्म।

द्रव्य कर्म—इस लोक में परमाणुओं से बने हुये सूक्ष्म स्कंध व्यापक हैं जिनको कार्माण स्कंध या कार्मण वर्गणाएं कहते हैं इनसे ससारी जीव का सूक्ष्म शरीर जिसको कार्माण शरीर कहते हैं बनता रहता है। जीव के अशुद्ध भावों के निमित्त से ये कर्म वर्गणाएं आती रहती हैं और बधती रहती हैं उनमें मुख्य आठ तरह की प्रकृति पड जाती है। कर्मों के आने और बधने के हेतु मिथ्या-दर्शन, अवरति, कषाय और योग है। आत्मा और अनात्मा पदार्थों के सच्चे स्वरूप की रुचि न होने को मिथ्यादर्शन कहते हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, व परिग्रह इन पॉच पापों से विरक्त न होकर इनका अभिप्राय रखना सो अविरति है। क्रोध, मान, माया, लोभ के भावों को कषाय कहते हैं। मन वचन काय के हलन चलन आचार को योग कहते हैं। इन भावों के द्वारा यह आत्मा सकम्प होता हुआ कर्म वर्गणाओं को आकर्षण करके बाध लेता है तब उनमें नीचे लिखे प्रकार आठ प्रकृतियें पड जाती हैं—(१) ज्ञानावरण—जो ज्ञान को प्रगट न होनेदे (२) दर्शनावरण—जो दर्शन को आवरण करे (३) वेदनीय—जो सुख या दुःख की वेदना कराने में निमित्त हो (४) मोहनीय—जो मोहित करे अर्थात् जो तत्वरुचि और शांत भाव को बिगाड़े (५) आयु—जो नरक, पशु,

मनुष्य या देव चार गति के किसी शरीर में रोक रक्खे (६) नाम—जो नाना प्रकार शरीर आदि की रचना करावे (७) गोत्र—जो नीच या ऊच कुलमें जन्म लिवाकर ऊच या नीच कहलवावे (८) अतराय—जो लाभ, भोग, उपभोग, दान तथा वीर्य म विघ्न करे—इन आठों कर्मो को द्रव्य कर्म कहते हैं।

भाव कर्म—जो जीव में मोहनीय कर्म के निमित्त से राग, द्वेष, मोह आदि अशुद्ध भाव होते है उन्हें भाव कर्म कहते हैं।

नो कर्म—कर्मो के निमित्त स जो शरीर व बाहरी पदार्थो का सम्बन्ध होता है उन्हें नोकर्म कहते है।

जब किसी ज्ञानी मानव के वध के कारण चारों ही मिथ्यादर्शन आदि भाव दूर होजाते हैं और पिछले बधे हुए कर्म वीतराग या शात भाव के अभ्यास से क्षय हो जाते हैं या गिर जात हैं तब आठों कर्मो से, सर्व प्रकार के अशुद्ध भावों से तथा शरीरादि से छूट जाने को मोक्ष कहते है–जब मात्र आत्मा अकेला अपने शुद्धभावों में रमण करता हुआ रहजाता है उसे ही मोक्ष कहते हैं—

" सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग ॥

(मोक्षशास्त्र अ० १ सूत्र १)

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र

की एकता होना मोक्ष का मार्ग है। इन्ही को तीन रत्न या रत्नत्रय Three Jewels कहते हैं यही मोक्ष का साधन है।

निश्चय नय से या असल में अपने ही शुद्ध आत्मा के सच्चे स्वरूप की रुचि लाना सम्यग्दर्शन है। अपने ही शुद्ध आत्मा के सच्चे स्वरूप का यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान है तथा अपने ही शुद्ध आत्मा के स्वरूप में रमना सम्यग् चारित्र है अर्थात् श्रद्धा और ज्ञान सहित आत्म ध्यान को मोक्ष मार्ग कहते हैं।

जिनके द्वारा निश्चय रत्नत्रय का लाभ हो उनको व्यवहार नय से रत्नत्रय या व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं- जीव, अजीव, आस्रव, बंध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंके यथार्थ श्रद्धान को व्यवहारनय से सम्यग्दर्शन कहते है। व इन्ही के यथार्थ ज्ञान को व्यवहार सम्यग् ज्ञान कहते हैं—

ससार के कारणों को त्यागने के अभिप्राय से ज्ञानी जीव के कर्म्मों के बंध होने के हेतुओं से छूटने के उद्यम को व बधे हुए कर्मों के क्षय करने के उपाय को व्यवहार सम्यग्चारित्र कहते हैं।

सात तत्त्वों का सक्षेप स्वरूप नीचे प्रकार है—

(१) जीव तत्व—यह चेतना लक्षणधारी है-अमूर्तीक

है। अपने ही अशुद्ध भावों का आपही कर्ता होता है तब इसके स्वयं कर्म बंध जाते हैं, जब कर्मों का फल होता है तब यह अपने सुखी होने व दुःखी होने रूप भाव करता है तब यह अपने ही अशुद्ध भावों का भोगता होजाता है। यद्यपि यह लोक व्यापी आकार रखता है तथापि किसी शरीर में शरीर प्रमाण सकोच या विस्तार रूप से होजाता है। जब तक इसके कर्मों का बध व फल हुआ करता है यह ससारी कहलाता है जब कर्म्म सब छूट जाते हैं तब यही मुक्त कहलाता है। ससार में इसके शरीर बनता है तब इस के छ भेद हो जाते हैं—

(१) एकेन्द्रिय जीव—जो मात्र स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा छूकर जानते है व काम करते हैं जैसे पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक, (Vegetable Kingdom)

(२) द्वेंद्रिय जीव—जो स्पर्शन और रसना इन दो इन्द्रियों से छूकर तथा स्वाद लेकर जानते हैं जैसे लट, केचुआ, सख कौड़ी आदि कीड़े।

(३) त्रेंद्रिय जीव—जो स्पर्शन, रसना और घ्राण इन तीन इन्द्रियों से छूकर स्वाद लेकर व सूंघकर जानते हैं जैसे चींटी, चींटे, बिच्छू, खटमल आदि।

(४) चौन्द्रिय जीव—जो स्पर्शन, रसना, घ्राण, और

चक्षु इन चार इन्द्रियों से छूकर–स्वाद लेकर, सूंघकर तथा देखकर जानते हैं जैसे मक्खी, पतंगा, भिड, भौंरा आदि

(५) पचेन्द्रिय जीव (असैनी)—जो स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाच इन्द्रियों से छूकर, स्वाद लेकर, सूंघकर, देखकर और सुनकरके जानते हैं ऐसे मन रहित जीव जैसे पानी में होने वाले एक जाति के सर्प व जगल में बिना गर्भ के पैदा होनेवाले तोते, मूषक आदि

(६) पचेन्द्रिय जीव (सैनी)—जो स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण तथा मन इन छः इन्द्रियों से छूकर स्वाद लेकर, सूंघकर, देखकर, सुनकर तथा विचार करके जानते हैं जैसे पशुओं में जलचर मछली मगरमच्छ आदि, थलचर कुत्ता, बिलाव, सिंह, मृग, गाय, भैंस, घोडा, ऊंट, हाथी, बन्दर, आदि, नभचर कबूतर, मोर, तोता, मैना, तीतर, बटेर, कौआ, चील, आदि मानवों में सर्व स्त्री पुरुष, देवों में सर्व तरह के देव देवी, नरक में सर्व ही नारकी ये सब जीव अपनी २ सत्ता (existence) भिन्न २ रखते हैं—ये सर्व ही अपने अपने अशुद्ध भावों से पाप या पुण्य बाधा करते हैं या अवनति तथा उन्नति किया करते हैं। मनुष्य अवनति करे तो एकेन्द्रिय जीव तक होसक्ता है उन्नति करे तो परमात्मा हो सक्ता है। एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक जंतु अवनति करें तो परस्पर अपने में

ही जन्मे उन्नति करें तो पचेन्द्रिय पशु तथा मानव होसक्ते हैं। पचेन्द्रिय पशु अवनति करें तो एकेन्द्रिय तक में व नरक में जासक्ते हैं उन्नति करें तो देव तथा मनुष्य होसक्ते हैं। देव अवनति करें तो एकेन्द्रिय तक में व उन्नति करें तो उच्च मानव होसक्ते हैं। नारकी अवनति कर तो पचेंद्रिय पशु में तथा उन्नति करें तो उत्तम मानव होसक्ते हैं।

इस तरह ससारी जीव अनादि काल से कर्म बध के कारण अनेक शरीरों में चक्कर लगाते रहते हैं।

(२) अजीव तत्त्व—जिनमें चेतना नहीं ऐसे पॉच मूल द्रव्यों को (real substances) अजीव तत्त्व कहते हैं। इनके कारण ही जीवों के कार्य होते हैं—

(१) पुद्गल द्रव्य—(matter) जिनमें स्पर्श, रस, गध, वर्ण हो—येही मिलते विछुडते रहते हैं। इनकी सब से छोटी अवस्था को परमाणु (indivisible atom) कहते हैं। इन्ही के मिलने से तरह २ के सूक्ष्म या स्थूल स्कध (molecules) बनते रहते हैं। सब प्रकार के शरीरादि पुद्गल से ही रचे हुए हैं—

असल में पुद्गल द्रव्य इस लोक में बडा काम करने वाला है इसी की ही सगति में जीव अशुद्ध हो ससार में काम करता रहता है।

(२) धर्मास्तिकाय (medium of motion) एक

अमूर्तीक लोक व्यापी द्रव्य है जो उदासीन पने से जीव और पुद्गल के हलन चलन में सहकारी है। जहां तक यह व्यापक है वहां तक ही जीव तथा पुद्गल चलते फिरते व हिलते रहते हैं।

(२) अधर्मास्तिकाय (midium of rest) एक अमूर्तीक लोक व्यापी द्रव्य जो उदासीन पने से जीव और पुद्गलों के ठहरने में सहकारी है। जहां तक यह व्यापक है वहां तक ही जीव तथा पुद्गल ठहरते रहते हैं या ठहरे हुए हैं।

(४) आकाश द्रव्य—एक अमूर्तीक अनंत द्रव्य जो सर्व द्रव्यों को जगह दे सका है।

(५) काल द्रव्य—अमूर्तीक कालाणु असंख्यात (innumerable) हैं जो रत्नों के समान लोक भर में फैले हुए हैं—ये कालाणु सर्व द्रव्यों के परिवर्तन में या अवस्था बदलनमें सहायक होते हैं। इनकी सहायता बिना कोई द्रव्य नएस पुराना व एक दशामें दूसरी दशामें नहीं होसक्ता है।

जैन सिद्धांत में इन अजीव पांच द्रव्यों को और सचेतन जीव द्रव्य को लेकर छह मूलद्रव्य (six real substances) बताए हैं। इनही के समुदाय को जगत या लोक कहते हैं। क्योंकि ये छः द्रव्य अनादि अनंत सत् है इस लिये यह जगत भी अनादि अनंत सत् है।

(३) आस्रवतत्त्व—मन वचन काय के द्वारा संसारी

जीव के हलन चलन होने से जो क्रियाएं होती हैं उनके निमित्त से कर्म वर्गणाओं का जो आत्मा के पास आकर्षण होकर आना होता है उसे आस्रव कहते हैं।

(४) बंध तत्त्व—आकर्षित कर्म वर्गणाओं का सूक्ष्म कार्मण देह के साथ जितने काल तक के लिए ठहर जाने को बंध कहते हैं। राग द्वेष यदि अधिक होते हैं तो अधिक काल तक कर्म ठहरते हैं यदि कम होते हैं तो थोड़े काल तक ठहरते हैं इसी मर्यादा के भीतर कर्म के स्कंध अपना फल देकर व बिना फल दिये गिर जाते हैं। वास्तव में अशुद्ध अभिप्राय ही पुण्य या पाप रूप कर्मों के बंध के कारण हैं।

(५) संवर तत्त्व—मन वचन काय के वर्तन को रोक कर जिन भावों से कर्म आते हैं व बंधते हैं उन भावों के रुकने से व उनके प्रतिपक्षी निर्मल भाव होने से आते हुए कर्मों के रुक जाने को संवर कहते हैं। जैसे कोई मानव असत्यवादी था। जब उसने असत्य त्याग की प्रतिज्ञा लेली तब असत्य मन वचन काय की क्रिया से जो कर्म आते सो रुक जाते हैं। यह तत्त्व मुक्ति का साधन है।

(६) निर्जरा तत्त्व—आत्मज्ञान सहित इच्छा को रोककर जो नाना प्रकार उपवास, रस त्याग, कायक्लेशादि तप किया जाता है व आत्म ध्यान की अग्नि जलाई जाती

है उससे बंधे हुए कर्मों की मर्यादा घट जाती है और वे शीघ्र गिर जाते हैं। तप द्वारा कर्मों के धीरे २ झड़ने को निर्जरा कहते हैं। यह तत्त्व मुक्ति का साधन है।

(७) मोक्ष तत्त्व—सर्व कर्मों से छूटकर आत्मा शुद्ध होजाने को मोक्ष कहते हैं—

व्यवहार सम्यग्चारित्र उभयरूप है। जो वीर जितेन्द्रिय आत्माएं हैं वे परिग्रह त्याग मुनि के नियमों को पाल कर आत्म ध्यान का अभ्यास भले प्रकार करते हैं—यह साधु मार्ग है—यही साक्षात् मुक्ति का साधक है दूसरा श्रावक मार्ग है—इसमें ग्रहस्थ धीरे २ गृहारम्भ से विरक्त होता हुआ व आत्म ध्यान का अभ्यास करता हुआ—ग्यारह श्रेणियां या प्रतिमाओं के द्वारा उन्नति करके फिर साधु हो जाता है।

श्रीनेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती (नौमी शताब्दी विक्रम) कहते हैं—

सव्वस्स कम्मणो जो खय हेदू अप्पणो हि परिणामो
णेओस भाव मोक्खो दव्य विमोक्खोय कम्मपुध भावो॥
सम्मद्दसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे
ववहारा णिच्छयदो तत्तिय मइओ णिओ अप्पा

(द्रव्यसंग्रह)

भावार्थ—सर्व कर्मों के नाश का कारण जो आत्मा

का शुद्ध परिणाम या भाव उसे भाव मोक्ष जानना चाहिये तथा सर्व कर्मों से अलग हो जाने को द्रव्य मोक्ष कहते हैं। व्यवहार नय से (from practical point of view) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र मोक्ष का साधन जानना चाहिये-निश्चय नयसे (from real point of view) उन तीन स्वरूप या सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मई अपना ही आत्मा मोक्ष का साधन है अर्थात् श्रद्धा व ज्ञान सहित अपने ही शुद्ध आत्मा का ध्यान मोक्ष का साधन है।

श्रीअमृतचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (विक्रम दसवीं शताब्दि) कहते हैं—

सर्व विवर्तोत्तीर्णं यदा स चैतन्य मचल माप्नोति
भवति तदा कृतकृत्य सम्यक् पुरुषार्थसिद्धिमापन्न ।
विपरीताभिनिवेश निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्व
यत्तस्माद विचलन स एव पुरुषार्थ सिद्ध्यु पायोऽयम्
(पुरुषार्थ सिद्ध्यु पाय)

भावार्थ—जब यह जीव सर्व अज्ञान व रागादि भावों से पार होकर निश्चल चैतन्य स्वभाव को प्राप्त कर लेता है तब भले प्रकार मोक्ष पुरुषार्थ को सिद्ध कर कृतकृत्य या सतोषी हो जाता है। मिथ्या अभिप्राय को दूर कर तथा भले प्रकार अपने आत्म तत्त्व का निश्चय करके जो उस आत्मतत्त्व से चलायमान न होना अर्थात् उसीका निश्चलता

से ध्यान करना—यही मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धिका उपाय है।

निज महिम रतानां भेद विज्ञान शक्त्या
भवति नियत मेषां शुद्ध तत्त्वोपलंभ
अचलित मखिलान्य द्रव्य दूरे स्थिताना
भवति सतिच तस्मिन्न क्षय' कर्म मोक्ष.

(समयसार कलश अ० ६ श्लो ४)

भावार्थ—जो भेद विज्ञान (self analysis) की शक्ति से अपने आत्म की महिमा में रत हो जाते हैं उनको अवश्य शुद्ध तत्त्व का लाभ या अनुभव होता है। जो सर्व अन्य द्रव्यों से दूर रहते हुए स्वभाव में निश्चल रहते हैं उन्ही को कर्मों से मुक्ति होती है जो मुक्ति कभी क्षय नहीं होती है।

एको मोक्ष पथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्ति वृत्त्यात्मक
स्तत्रैव स्थिति मेति यस्तमनिशं ध्यायेचतचेतति ।
तस्मिन्नेव निरतर विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्य समयसार मचिरान्नित्योदय विन्दति ॥

(समयसार कलश अ०६ श्लो ४४७)

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप ही एक असलमें मोक्ष का साधन है जो कोई इसीही एक में ठहरता है व रात्रि दिन इसी ही को ध्याता है व इसी का अनुभव करता है तथा इसी आत्मस्वरूप मई मोक्ष मार्ग

में रत है तथा अन्य द्रव्यों का ध्यान न करता हुआ उसी में ही निरंतर विहार करता है वह शीघ्र ही अवश्य नित्य उदय रूप समयसार या परमात्मपद को पा लेता है।

असल में मुक्ति आत्मा का शुद्ध स्वरूप है। और मुक्ति का साधन आत्मा का शुद्ध स्वरूप का ध्यान है। जैन सिद्धांत ने मुक्ति और मुक्ति का साधन यही बताया है। पाठकों को व श्रोताओं को उचित है कि इस लेख पर गंभीरता से विचार करें व विशेष जानने के हेतु ऊपर प्रमाण में कहे हुए ग्रंथों का व अन्य वैसे ही जैन ग्रंथों का विचार करें तो उनको जैन धर्मानुसार इस विषय का यथार्थ ज्ञान हो जायगा।

वीर संवत २४५४ की वीर जयंति उत्सव पर जैन धर्म की असली प्रभावना का उद्यम करने वाले जैन मित्र मंडल ने मुझसे कहा था कि "मुक्ति और उसके साधन" इस विषय पर एक लेख जैनसिद्धांतानुसार लिखकर दिया जाय तदनुकूल मैंने थोड़े में वाक्यों में इस विषय को पूर्ण किया है। आशा है जैन मित्र मंडल के सदस्य इस लेख का प्रकाश करके जगत के मानवों का कल्याण करेंगे—

ता १८ मार्च १९२८ } जैन धर्म का प्रेमी
ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद

जैनमित्र मंडल के प्रकाशित ट्रैक्ट।

उपासनातत्त्व पंडित जुगलकिशोर मुख्तार	मूल्य -)
जिनेन्द्रमतदर्पण प्रथमभाग ब्र० शीतलप्रशादजी	मूल्य -)
जैनधर्मप्रवेशिका प्रथमभाग बाबू सूरजभान वकील	मू० =)
जैनधर्म ही भूमडल का सार्वजनिक धर्म सिद्धान्त हो सक्ता है लेखक बाबू माईदयाल जैन	मूल्य)॥।
द्रव्यसग्रह पंडित गौरीलाल जी	मूल्य =)
हितैषीगायन प्रथमभाग मास्टर भूरामल	मूल्य -)॥
हितैषीगायन चतुर्थभाग " "	मूल्य -)॥
घोर अत्याचार और उसका फल	मूल्य -)॥
देहली शास्त्रार्थ	मूल्य।)
ज्ञानसूर्योदय द्वितीयभाग बाबू सूरजभान वकील	मूल्य =)
जैन धर्म उर्दू गिरवरलाल जी	मूल्य ।)
लार्ड पार्श्व अंग्रेजी श्रीहरिसत्य भट्टाचार्य	मूल्य ।)
लार्ड महावीर " "	मूल्य =)
लार्ड अरिष्ट नेमी " "	मूल्य ।=)
रिपोर्ट महावीर जयन्ती सन् १९२६ उर्दू	मूल्य -)॥
रिपोर्ट जयन्ती सन् १९२७ उर्दू	मूल्य ।)
रिपोर्ट जयन्ती सन् १९२८	मूल्य =)
रिपोर्ट जयन्ती अंग्रेजी	मूल्य ।)

मिलने का पता—

जैन मित्रमंडल कार्यालय देहली

हम और हमारे कार्य के बारे में कुछ सम्मतियाँ

से सस रिपोर्ट, इण्डिया गवर्नमैण्ट, सन् '२१

जैन मित्र मंडल दिल्ली में प्रमुख साहित्यक संस्था है।

रा०ब०जगमन्दरलाल जज हाईकोर्ट, इन्दौर, २२जून'२१

"ट्रैक्ट सब अच्छे है। आपमें जैन धर्म है। भला है औरों के भले से भला होता है।"

बैरिस्टर चम्पतराय जी, (लंदन से) २७-५-२६

नाम्बी जैन मित्र मंडल देहली ने बडा कारनुमायाँ किया जो ऐसा आलीशान जल्सा महावीर जयंती का मनाया। क्या वह दिन अनक़रीब है कि जब दुनिया के हर हिस्से में जहां जनीनी इंसान मुकीम हो भगवान का जन्म दिन इसी तरह मनाया जायगा

रा० ब० डाक्टर मोतीसागर, लाहौर,

जैनमित्रमंडल ने दुनिया में जैन धर्म का महत्त्व फैला दिया है, मैं इसमंडलके कामको मुबारिकबाद देता हूं।

बाबू अजितप्रसाद वकील, लखनऊ,— आपका मंडल जिस कदर काम करता है काबिले तहसीन है।

बाबू सूरजभान वकील, मेरठ—'ऐसेही कामोंसे जैनधर्म की प्रभावना होसक्ती है, आपके उद्यम को धन्य है।

ला०दीवानचंद,मैनेजर पंजाब एंड कश्मीर बैंक लि०जेहलम

ट्रैक्ट को एकबार नहीं तीन बार पढ़ा। बडा आनंद आया। आपके प्यार और होनहार मंडल के सुनहरी कारनामे पढ़कर दिल बडा प्रसन्न हुआ।

जैन दर्शन में तत्त्व-मीमांसा

प्रकाशित कर सकें— इसके बारे में विद्यावारिधि चम्पतरायजी ने जो बताया ठीक ही है। डा० ।

'मेरी सराहना पर विश्वास रखिये। भारत प्रति मेरा प्रेम बहुत पुराना है, और आपके धर्मग्रन्थ भाषा से परिचय होने के कारण आपके पुरातन ध प्रति भी मेरे हृदय में श्रद्धा है।

ए०वी०विलियम्स जैक्सन, न्यूयार्क) अमरीका)

आचार्य अमितगति जी का सामायिक पाठ भेजकर आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। शुद्ध वह उच्चाति उच्च और पवित्रतम विचार जो भारतवर्ष विश्व को प्रदान करता है, इस छोटीसी पुस्तिका में बहुतही सुन्दर रूप में गर्भित है। डा० एच० जिम्मर, हैडलबर्ग (जरमनी)

कृपाकर जैन शरणायें पर आपके उत्तम निबन्ध और 'सामायिक पाठ नामक शुभकारी श्लोकसंग्रह की प्रतियाँ भेजने के लिये मेरी ओर से हार्दिक धन्यवाद कृपाकर स्वीकार कीजे। ई० रैप्सन, कैम्ब्रिज (लंदन)

जैन धर्म के अद्भुत तत्वों के सम्बन्ध में प्रत्येक प्रकार की जानकारी पाने को मैं उत्सुक रहता हूं।

सामाजिक शांति और न्याय की उपलब्धि का सच्चा रास्ता जैनधर्म के अलौकिक सत्य ज्ञान में निहित है। जैन आदर्श की पूर्ण उपलब्धि प्राप्त करने के मार्ग में मैं भी एक विनीत कार्यकर्ता और सेवक हूं इसका मुझे अभिमान है।

एलक्जेण्डर गार्डन सुररे (लंदन)